नमो नमः श्रीगुरुरामजगच्चन्द्र सूरये॥

गृद्धपिच्छाचार्य प्रणीत श्री तत्त्वार्थसूत्र की दिगम्बरीय वृत्ति

DATE / /

का.व.6, 2072
Kuvala

सर्वार्थसिद्धि

(कर्ता- पूज्यपाद स्वामी)

मंगल मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

अर्थ मोक्षमार्ग ले जाने वाले, कर्म रूपी पर्वत को भेदने वाले और सभी तत्त्वों के ज्ञाता को उनके गुणों की प्राप्ति के लिए वंदन करता हूँ।

उत्थानिका- स्वयं के हित को चाहने वाला कोई निकट भव्य पुरुष आश्रम में निर्ग्रंथ आचार्य को पूछता है- भगवन्! आत्मा का हित क्या है? आचार्य- मोक्ष। भव्य पुरुष- मोक्ष का स्वरूप और प्राप्ति का उपाय क्या है? इस प्रश्न के उत्तर रूप तत्त्वार्थ सूत्र की रचना हुई।

भाष्य अनुसार- प्रश्न के उत्तर रूप नहीं किन्तु ग्रंथकार ने अनुग्रहबुद्धि से तत्त्वार्थ सूत्र की रचना की है।

तत्त्वार्थवार्तिक में दोनों प्रकार से उल्लेख किया है।

सू. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः 1-1॥

टी. (i) दर्शन और ज्ञान एक साथ उत्पन्न होते हैं। जिस समय दर्शनमोहनीय का क्षय, उपशम या क्षयोपशम होता है, उसी समय उसके मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान का निराकरण होकर मति-श्रुतज्ञान प्रकट होते हैं।

सू. तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् 1-2॥

टी. (i) योऽर्थो यथावस्थितस्तथा तस्य भवनम्= जो पदार्थ जिस रूप में अवस्थित है, उसका उस रूप होना, वह तत्त्व।

(ii) 'दर्शन' पद में दृश् धातु का 'देखना' प्रसिद्ध अर्थ क्यों छोड़ दिया है? उ. मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से दृश् धातु का अर्थ 'तत्त्वार्थ की श्रद्धा' लिया है। यदि 'देखना' अर्थ ले, तो वह सामान्य से सब संसारी जीवों को होता है, अतः सभी को मोक्ष प्राप्ति की आपत्ति आती।

(iii) सम्यग्दर्शन २प्र.- सराग और वीतराग। प्रशम-संवेग- अनुकंपा- आस्तिक्य आदि की

अभिव्यक्ति लक्षण वाला सराग सम्यग्दर्शन और आत्मा की विशुद्धि मात्र वीतराग सम्यग्दर्शन।

* यहाँ प्रशम, संवेगादि लक्षण सराग सम्यग्दर्शन के कहे, वे उपचार से कहे। सम्यग्दर्शन निश्चय से आत्मविशुद्धि मात्र है और ये लक्षण आत्मविशुद्धि के ज्ञापक हैं।

सू. नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः 1-5॥

टी.(ii) प्र. निक्षेप विधि का कथन किसलिए किया जाता है? उ. प्रकृत अर्थ का निरूपण और अप्रकृत अर्थ का निराकरण करने के लिए।

→ आशय यह है कि लोक में एक-एक शब्द के प्रयोजन अनुसार अनेक अर्थ होते हैं। कहां किस अर्थ में वह शब्द प्रयोग किया गया है, यह बताना निक्षेप विधि है। जैसे, 'जीवन शब्द' कोई व्यक्ति कहे कि 'जीवन' शब्द में जीव् धातु है, यहाँ नाम निक्षेप है। कोई व्यक्ति कहे कि 'जीवन' को बुलाओ, यहाँ स्थापना निक्षेप से जिस पुरुष का नाम जीवन हो उसे बुलाना है। किसी मृत व्यक्ति के बारे में कोई कहे कि इसका जीवन बहुत सुंदर था, यह द्रव्य जीवन हुआ। कोई कहे कि अपने जीवन में हमें गुणों को प्रगट करना चाहिए, यहाँ भाव निक्षेप से अर्थ ग्रहण करना है। इस प्रकार प्रयोजन अनुसार अप्रकृत अर्थ का निराकरण और प्रकृत अर्थ का निरूपण होता है, जिससे व्यवहार में गड़बड़ न हो।

सू. प्रमाणनयैरधिगमः 1-6॥

टी.(i) प्रमाण - 2 प्र. स्वार्थ और परार्थ। श्रुतज्ञान सिवाय 4 ज्ञान स्वार्थ प्रमाण है, श्रुतज्ञान स्वार्थ और परार्थ दोनों है। ज्ञानात्मक प्रमाण को स्वार्थ प्रमाण कहते हैं और वचनात्मक प्रमाण को परार्थ प्रमाण कहते हैं।

* श्रुतज्ञान वितर्क सहित है, शेष चार वितर्क रहित है। सवितर्क होने से श्रुत के प्रमाण और नय, दो भेद होते हैं।

DATE ___/___/___

सू. बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् 1-16॥

टी. (i) जब पूरी वस्तु प्रकट नहीं होती, कुछ अप्रकट रहती है तब अनिःसृत कहे जाते हैं।

सू. क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् 1-22॥

★ क्षयोपशम निमित्त अवधिज्ञान 3 प्र.- देशावधि, परमावधि और सर्वावधि

सू. औपशमिकक्षायिकौ .... 2-1॥

टी. (i) द्रव्यात्मलाभमात्रहेतुकः परिणामः = जिनके होने में द्रव्य का स्वरूपलाभ मात्र कारण है वह परिणाम, परिणाम से होने वाले भाव पारिणामिक।

(ii) औपशमिक और क्षायिक भाव भव्य को ही होते हैं। मिश्र भाव अभव्य को भी होते हैं, यह बताने के लिए 'मिश्र' पद मध्य में रखा।

सू. सम्यक्त्वचारित्रे 2-3॥

★ उपशम 2 प्र.- करणोपशम और अकरणोपशम। जो उपशम अंतरकरण पूर्वक हो, वह करणोपशम। यह सम्यक्त्व दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का ही होता है, इसलिए औपशमिक भाव में ये दो ही बताएँ गए हैं। अकरणोपशम यानि अनुदय, यह अनंतानुबंधी चतुष्क का होता है।

सू. ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च 2-4॥

टी. क्षायिक दान = अभयदान। क्षायिक लाभ = उनके शरीर को बल देने में कारणभूत, परमशुभ, ऐसे अनंत परमाणु का प्रति समय संबंध। क्षायिक भोग = कुसुमवृष्टि इत्यादि अतिशय। क्षायिक उपभोग = सिंहासन, चामर, छत्र इत्यादि।

प्र. ये क्षायिक भाव सिद्धों में भी होना चाहिए? उ. ये भाव शरीर नामकर्म और तीर्थंकर नाम कर्म की अपेक्षा वाले हैं, और ये कर्म सिद्धों को नहीं होते। प्र. तो फिर ये क्षायिक भाव सिद्ध में कैसे माने जाएँ? उ. जैसे अनंत ज्ञान से अनंत वीर्य होता है, वैसे अव्याबाध सुख से ये क्षायिक भाव होते हैं।

सू. गतिकषायलिङ्ग --- 2-6॥
टी. भावलेश्या कषायोदयरञ्जिता योगप्रवृत्तिः = कषाय के उदय से रंजित योग की प्रवृत्ति भाव लेश्या है, इसलिए वह औदयिक।

सू. स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः 2-9॥
* उपयोग यानि ज्ञान-दर्शन की प्रवृत्ति। संसारी जीव को एक काल में एक और केवली को दो उपयोग होते हैं। ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग छद्मस्थ में क्रम से और आवरण रहित जीवों में युगपत् होते हैं।

सू. समनस्कामनस्काः 2-11॥
टी. द्रव्य मन पुद्गलविपाकी अंगोपांग नामकर्म के उदय से होता है।

सू. निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् 2-17॥
* उपकरणेंद्रिय तत्त्वार्थभाष्य में शक्ति रूप है किन्तु यहाँ इंद्रिय में काली कीकी इत्यादि को उपकरणेंद्रिय माना है।

सू. विदेहेषु संख्येयकालाः 3-31॥
टी. सभी विदेह में संख्यात वर्ष के आयुष्य वाले मनुष्य होते हैं। सुषमदुःषमा आरे के अंत काल समान काल सदा अवस्थित है। नित्य आहार, 500 धनुष ऊँचाई, उत्कृष्ट आयु। पूर्वकोटी वर्ष, जघन्य अंतर्मुहूर्त।

सू. प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः 3-35॥
* 3 अवस्था में मनुष्य $2\frac{1}{2}$ द्वीप के बाहर भी मिलते हैं-
1. जो मनुष्य मरकर $2\frac{1}{2}$ द्वीप के बाहर उत्पन्न होने वाले हो, वे यदि मरण समुद्घात करे।
2. $2\frac{1}{2}$ द्वीप के बाहर से कोई जीव मनुष्य में उत्पन्न हो तो उसे मनुष्यायु और मनुष्य गति $2\frac{1}{2}$ द्वीप के बाहर ही उदय में आ जाता है।
3. केवलि समुद्घात।

DATE / /

सू. आर्या म्लेच्छाश्च 3-36॥

★ अकर्मभूमिज आर्य और म्लेच्छों के 1 से 4 तक गुणस्थान होते हैं। कर्मभूमिज आर्य और म्लेच्छ अणुव्रत तथा महाव्रत के भी अधिकारी हैं।

सू. सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारे-ष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च 4-19॥

★ दिगंबर मत में कल्प 16 माने गए हैं। श्वे. "दशाष्टपंचद्वादश... 4-3" सूत्र में तो 12 भेद दिखाएँ हैं? उ. वे इंद्र की अपेक्षा। सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र इन 4 कल्प के 4 इंद्र हैं। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार इन 2-2 कल्पों में पूर्व के कल्प के नाम वाले 1-1 इंद्र हैं। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत के 4 इंद्र। 'नवसु' पद से ग्रैवेयकों के ऊपर 9 अनुदिश विमान।

सू. सारस्वतादित्य... 4-25॥

★ दिगंबर मत में 8 ~~ग्रैवेयक~~ लोकांतिक माने गए हैं। 'मरुत्' नामक लोकांतिक नहीं स्वीकारे गए हैं। ये एकावतारी हैं, 14 पूर्वधर हैं।

★ देवों की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति तथा शरीर की ऊँचाई।

देव	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	शरीर
भवनपति →	10000 वर्ष	~~सागर से~~	7 हाथ
असुर कु.		~~8~~ ~~पल्य से~~	
नाग कु.		$\frac{3}{2}$ प.	
सुपर्ण कु.		$2\frac{1}{2}$ प.	
द्वीप कु.		$\frac{3}{2}$ प.	
शेष 6		$1\frac{1}{2}$ प.	
व्यंतर	10000 वर्ष	1 प.	7 हाथ

सौधर्म ऐशान	1↑ प.	2↑ सा.	7 हाथ
सानत्कु.माहेन्द्र	2↑ सा.	7↑ सा.	6 हाथ
ब्रह्मब्रह्मोत्तर	7↑ सा.	10↑ सा.	5 हाथ
लांतवकापिष्ठ	10↑ सा.	14↑ सा.	5 हाथ
शुक्र-महाशुक्र	14↑ सा.	16↑ सा.	4 हाथ
शतार-सहस्रार	16↑ सा.	18↑ सा.	4 हाथ
आनत-प्राणत	18↑ सा.	20 सा.	3½ हाथ
आरण-अच्युत	20 सा.	22 सा.	3 हाथ
9 ग्रैवेयक→			
नीचे के 3	22-24 सा.	23-25 सा.	2½ हाथ
मध्य 3	25-27 सा.	26-28 सा.	2 हाथ
ऊपर 3	28-30 सा.	29-31 सा.	1½ हाथ
9 अनुदिश	31 सा.	32 सा.	1½ हाथ
विजयादि 4	32 सा.	33 सा.	1 हाथ
सर्वार्थसिद्ध	–	33 सा.	1 हाथ

(सूत्र 4-28 से 4-41 तक)

सू. शब्द-बंध... 5-24॥

टी. स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधाराग्नीन्द्रधनुरादिविषयः। = स्निग्ध और रूक्ष गुण के निमित्त से होते बिजली, उल्का, बादल, अग्नि, इन्द्रधनुष आदि वैस्रसिक बंध हैं।

सू. कालश्च 5-39॥

टी. (i) जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है, वह सत्। जो गुण-पर्याय वाला है, वह द्रव्य। द्रव्य के ये दो लक्षण हैं और काल द्रव्य इन दोनों से युक्त है। काल में ध्रौव्य स्वनिमित्तक है, उत्पाद-व्यय परनिमित्तक है। उसका असाधारण गुण वर्तना है, अचेतनत्व, अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्वादि साधारण गुण हैं। उत्पाद-व्यय रूप पर्याय होती है।

DATE ___/___/_____

इस प्रकार वह सत् द्रव्य है, यह सिद्ध होता है।

(ii) वह एक द्रव्य नहीं है, असंख्य द्रव्य रूप है। वह काय रूप नहीं है किंतु अणु रूप है। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है। वे कालाणु निष्क्रिय हैं।

★ प्र. जीव, पुद्गलादि द्रव्यों का परिणमन कैसे हो रहा है? उ. यदि कोई कहे कि स्वभाव से ही परिणमन हो रहा है तो फिर प्रश्न होगा कि गति-स्थिति-अवगाह में धर्म-अधर्म-आकाश द्रव्य का निमित्त मानने की क्या जरूर है, इन कार्यों को भी सर्वथा स्वभाव से मानने में क्या आपत्ति है? यदि इन्हें भी स्वभाव से मानें तो फिर पुद्गल और जीव दो ही द्रव्य बचेंगे। किंतु जैसे धर्मादि द्रव्यों को निमित्त कारण माना गया है, वैसे परिणमन में भी कोई निमित्त कारण मानना चाहिए। उसका निमित्त काल द्रव्य है। वह द्रव्य भी लोकाकाश का अवगाह कर रहता है। वह ~~अन्य द्रव्यों के परिणमन का निमित्त है तथा स्वयं के परिणमन का उपादान है।~~ जिस प्रकार आकाश द्रव्य को अवगाह के लिए अन्य किसी द्रव्य का निमित्त नहीं चाहिए, वह स्वयं अवगाह करता है और दूसरे को अवगाह देता है, वैसे ही काल द्रव्य स्वयं परिणमित होता है और दूसरे को परिणमित करता है।

सू. शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्षशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च 7-6॥

अ. तीसरे अदत्तादानव्रत की 5 भावना- शून्यागारावास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्षशुद्धि, सधर्माविसंवाद।

टी. (i) शून्यागारावास= पर्वतगुफा, वृक्षकोटरादि शून्यागार में रहना।
विमोचितावास= दूसरे द्वारा छोड़े हुए मकान वि. में रहना।
परोपरोधाकरण= दूसरों को रुकने से नहीं रोकना।
भैक्षशुद्धि= आचारशास्त्र में बताई हुई विधि से भिक्षा लेना।
सधर्माविसंवाद= साधर्मिकों से झगड़ा न करना।

DATE __/__/ 75

सू. एकादश जिने 9-11॥

★ यहाँ केवली भ. को असाता वेदनीय के उदय से 11 परीषह बताए। किंतु ये परीषह हकीकत में केवली को नहीं होते, सिर्फ उनके कारण रूप वेदनीय का उदय होता है। इसकी युक्तियाँ-

1. केवली के शरीर में निगोद या त्रस जीव नहीं होते। देवों के शरीर में जो विशेषता होती है, उससे अनंतगुणी विशेषता इनके शरीर में होती है।

2. श्रेणी आरोहण में प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग (रस) अनंत गुना बढ़ता है और अप्रशस्त का प्रत्येक समय अनंत गुन हीन होता है। इसलिए 13वें गुण स्थान में असाता का उदय इतना बलवान् नहीं होता कि वह क्षुधादि कार्यों को कर सके।

3. असाता की उदीरणा 6ठें गुणस्थान तक ही होती है। अतः वह क्षुधादि कार्य का साधन नहीं होता।

4. वेदनीय कर्म का कारण शरीर में पानी या भोजन का अभाव करना नहीं है। इनका अभाव तो अन्य कारणों से होता है। इनका अभाव होने पर असाता वेदनीय का उदय या उदीरणा होती है। केवली के शरीर में इनका अभाव होता ही नहीं है।

5. केवली को साता वेदनीय का उदय और बंध प्रत्येक समय रहता है। जब उन्हें असाता उदय में आता है, तब वह अनंत गुणा शक्ति वाले साता के साथ उदय होता है।

6. सुख-दुःख वेदनीय कर्म का कार्य होने पर भी मोहनीय कर्म के निमित्त वाला है। केवली को मोहनीय कर्म होता नहीं है।

सू. एकादयो भाज्या युगपदेकोनविंशतेः 9-17॥

टी. प्र. प्रज्ञा और अज्ञान परीषह एक साथ होना असंभव है? उ. एक आत्मा में एक साथ श्रुत ज्ञान की अपेक्षा प्रज्ञा परीषह और अवधिज्ञानादि की अपेक्षा अज्ञान परीषह हो सकता है।

DATE / /

सू. अनशनावमौदर्य... ९-१९॥

टी. प्र. परीषह और कायक्लेश में क्या अंतर है? उ. अपने आप प्राप्त हुआ परीषह और स्वयं किया गया कायक्लेश है।

अंतिम मंगल येनेदमप्रतिहतं सकलार्थतत्त्वमुद्द्योतितं विमलकेवललोचनेन।
भक्त्या तमद्भुतगुणं प्रणमामि वीरमारान्नरामरगणार्चितपादपीठम्॥

अर्थ जिनके द्वारा निर्मल केवलज्ञान रूपी चक्षु से यह निर्विवाद सकल तत्त्वार्थ प्रकाशित किया गया है, उन मनुष्य और देवों के समूह से पूजित चरण वाले, तथा अद्भुत गुण वाले वीर प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ।

इति श्रीसर्वार्थसिद्धिवृत्तौ यत्र यत्र अर्थान्तरं अस्ति तत् तत् संक्षेपेण लिखितम्
समाप्तिवासर: का.व.७, 2013, Kuvala.